P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-2* ISSUE-3* June- 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं पुरातत्व में यक्ष पूजा की उपादेयता

अदिति शर्मा
व्याख्याता,
इतिहास विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
जयपुर

सारांश

भारत में प्राचीनकाल से ही यक्ष पूजा का अस्तित्व रहा है। यक्ष धन एवं समृद्धि के देवता माने गये हैं। धन, स्वास्थ्य एवं अमरत्व प्रदान करने के कारण ये लोक प्रिय देव बन गये। साहित्य एवं पुरातत्व में यक्ष पूजा के प्रभूत प्रमाण प्राप्त हुए हैं। वेद, ब्राह्मण, महाकाव्य एवं पुराणों में यक्ष का उल्लेख मिलता है। मौर्य काल में मथुरा, पटना, विदिशा, नोह से यक्ष एवं यक्षिणियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। कश्मीर से तमिलनाडू तक तथा सौराष्ट्र से बंगाल तक आज भी कई क्षेत्रों में यक्षों की पूजा की जाती है।

मुख्य शब्द : यक्ष, अवध्यपुर, महत्, हारीती, जाक्ख, वैश्रवण, बृहदवपु, यक्षसदम, चमर, नीवी, घटोदर,यक्ष का चौरा, अपराजितपुरी, ताल, स्तूप , प्रस्तर पट्टा, लोकपाल, ब्रह्ममह, कुबेर, पुरातत्व।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय परम्परा में यक्ष पूजा का पर्याप्त महत्व था। सर्वप्रथम ऋग्वेद में यक्ष की पूजा का उल्लेख मिलता है। किन्तु यहाँ वह संभ्रान्त देव नहीं है वरन् उसे "अवम्" की संज्ञा देते हुए अन्य देवताओं से निम्न कहा गया है।[1] यक्ष पूजा को सारहीन बताकर देव भक्तों को यक्ष के प्रभाव से बचने का उल्लेख प्रथम वेद करता हैं। यक्ष के रहने के स्थान को ऋग्वेद में यक्षसदम् कहा गया है।[2] अथर्ववेद में लोक धर्म का प्राधान्य है अतः यहाँ यक्ष के विषय में अधिक जानकारी मिलती है। चतुर्थ वेद यक्ष भवन को अपराजितपुरी की संज्ञा देता है।[3] यक्ष को बृहद्वपु अथवा महत् स्वरूप कहा गया है जो उसके विशाल, महाकाय शरीर का द्योतक है। प्रतीत होता है कि इस समय तक यक्ष लोक मान्यता और विश्वास का केन्द्र बन गये थे। उनकी लोकप्रियता का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इन्द्र, वरूण, सोम आदि प्रधान वैदिक देवताओं को भी यक्ष की श्रेणी में रखा जाने लगा। अथर्ववेद यक्षों के राजा कुबेर का उल्लेख करता है। यहाँ कुबेर को वैश्रवण, यक्षराज, यक्षेष तथा यक्षेन्द्र आदि सम्बोधनों से पुकारा गया है। महाकाव्य आदिदेव ब्रह्मा द्वारा यक्षराज कुबेर को अमृतत्व, धनाधिपत्व तथा लोकपालत्व के तीन वरदान दिये जाने का उल्लेख करते हैं। मूलतः यक्ष धन अथवा समृद्धि के सूचक थे। इनका सम्बन्ध अमरता, स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन तथा समृद्धि से था और इन्हीं गुणों के कारण यक्ष पूजा इस लोक में लोकप्रिय हुई। रामायण में यक्ष और अमरत्व को पर्याय माना गया है।[4] महाभारत में यक्ष को महाकाय तथा पर्वतोपम कहा गया है। यहाँ यक्षसदन को अवध्यपुर (ऐसा स्थान जहाँ मृत्यु न पहुँच सके) की संज्ञा दी गई है।[5]इसी महाकाव्य के एक प्रंसग में यक्ष युधिष्ठिर संवाद होता है जिसमें यक्ष ने प्रथम पाण्डव से धर्म सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछें थे। यह यक्ष एक तालाब का रक्षक देव था। यक्ष का एक पयार्य ब्रह्म था इसलिए महाभारत में यक्ष महोत्सव को ब्रह्ममह कहा गया है।[6] पुराणों के अनुसार सर्वप्रथम लोक में यक्ष पूजा ही प्रचलित थी। परवर्ती परम्परा में यक्षों की महिमा लोकधर्मो में बद्धमूल दिखाई पड़ती है जिसे विविध सम्प्रदायों और पूजा विश्वासों ने अपने–अपने ढंग से आत्मसात कर लिया। साहित्य के साथ–साथ पुरातत्व भी यक्ष पूजा की परम्परा तथा लोकप्रियता की ओर इंगित करता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य साहित्य एवं पुरातत्व के पुनरावलोकन में प्राचीन भारतीय लोक परम्परा में यक्ष पूजा की महत्ता को स्पष्ट करना है। इतिहास के दो महत्वपूर्ण आधार साहित्य एवं पुरातत्व में यक्ष को क्या स्थान प्राप्त था ? क्यों वे लोक देवता बने ? उनकी लोकप्रियता का कारण क्या था ? उनका आकार एवं वेषभूषा कैसी थी ? इन्हीं सभी प्रश्नों के समाधान का प्रयास शोध पत्र में किया गया है।

साहित्यिक पुनरावलोकन

उक्त शोध पत्र के लिए विद्वानों द्वारा रचित ग्रन्थों एवं शोध पत्रिकाओं से जानकारी प्राप्त हुई। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल की पुस्तक "भारतीय कला", डॉ. पृथ्वी कुमार अग्रवाल द्वारा विरचित "भारतीय कला एवं वास्तु," "गुप्त कालीन कला", डॉ. सच्चिदानन्द सहाय कृत "मंदिर स्थापत्य का इतिहास", डॉ. शिव कुमार गुप्त द्वारा संपादित "भारतीय संस्कृति के मूल आधार" तथा श्री रत्न चन्द्र अग्रवाल के लेख "राजस्थान की यक्ष प्रतिमाएं" से विषय सम्बन्धी जानकारी प्राप्त हुई।

भारतवर्ष के विविध भागों से विशाल मानव आकृतियाँ मिली है जिन्हें उनकी विशेषताओं एवं वास्तु के आधार पर प्रायः यक्ष प्रतिमा माना जाता है। यक्ष पूजा और उनकी प्रतिमाओं के विस्तार का क्षेत्र विपुल है। कुरूक्षेत्र से उड़ीसा तक, अहिच्छत्र से विदर्भ तक, मगध से शूर्पारक तक तथा अन्यत्र विशाल आकार की स्वतन्त्र यक्ष मूर्तियाँ पुराविदों को प्राप्त हुई है। इनमें भी पटना, परखम, नोह, बडौदा, झींग का नंगला आदि से प्राप्त ईसा पूर्व की शताब्दियों की विशालकाय यक्ष प्रतिमाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन प्रतिमाओं के कुछ सामान्य व समान लक्षण है जो उन्हें यक्ष मूर्तियों की श्रेणी में ला खड़ा करते हैं। विशाल आकार, मूर्तियों का निकला हुआ पेट, भौतिक बल की प्रतीक, विशिष्ट वेशभूषा व आभूषण तथा हाथ में स्थित धन की पोटली इन प्रतिमाओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अधिकांश मूर्तियाँ बलुए पत्थर से बनाई गयी है। बेसनगर, झींग का नगला तथा दीदारगंज से यक्षी की प्रतिमा प्राप्त हुई है। कुछ यक्ष प्रतिमाओं पर लेख भी उत्कीर्ण मिलते है। प्रारम्भ में इन मूर्तियों की पहचान संदिग्ध थी।[7] कुछ इतिहासकारो ने इन्हें राजा अजातशत्रु एवं नन्द की मूर्ति माना।बाद में इन पर उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट हुआ कि ये लोकदेवता यक्ष की मूर्तियाँ है। आरम्भिक मूर्तियों पर कहीं–कहीं अव्यवस्थित, अपरिष्कृत पॉलिश मिली है, जो इस बात की ओर संकेत करती है कि इनकी रचना मौर्य काल में हुई थी।

यक्ष का सम्बन्ध ताल (तालाब) अथवा जल से भी स्थापित किया गया है। प्रमाण स्वरूप यक्षों की कई प्रतिमायें ताल या नदियों के किनारे से प्राप्त हुई है। महाभारत में उल्लेखित यक्ष तालाब का रक्षक ही था। यक्ष का सम्बन्ध वनस्पति, वृक्ष, लता आदि से भी माना गया है। स्तूपों एवं प्रस्तर पट्टों पर उन्हें वनस्पति के इर्द–गिर्द दर्शाया गया है। कुछ प्रतिमाओं के हाथ में चमर भी दिखाया गया है जो उनके कुबेर का अनुचर होने का द्योतक है। कुछ यक्ष प्रतिमाओं के हाथ में धन की थैली नीवी जिसे नोली भी कहा जाता है, मिली है जिससे यक्ष देवता का धनद स्वरूप स्पष्ट होता है। ये मूर्तियाँ पूरी गोलार्द्ध में बलुए पत्थर को तराषकर बनाई गई है। किन्तु इनमें आध्यात्मिकता का अभाव है। मूर्तियों का निकला हुआ पेट, भारी–भरकम शरीर, सिर पर मुरेठेदार पगडी, कंधो पर फैला उत्तरीय, उदर बंध, कानों में बड़े कुण्डल, गले में तिकोना हार आदि लक्षण यक्ष प्रतिमा को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं।

शुंग काल में यक्ष प्रतिमाएँ बहुलता से निर्मित हुई। इस समय तक न तो ब्राह्मण देवताओं की मूर्तियाँ सामने आई थी और न ही बुद्ध और तीर्थंकरों की। अतः ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मावलम्बियों के लिए यक्ष देवता के रूप में समान रुप सें पूज्य थे। शुंग काल में निर्मित बौद्ध स्तूपों में भी यक्ष–यक्षी की मूर्तियों का प्राधान्य रहा । ऐसा प्रतीत होता है कि भरहुत और सांची के स्तूप ऐसे लोगों द्वारा बनवाये गये जो यक्ष पूजा में विश्वास करते थे। स्तूपों के तोरण–द्वार तथा वेदिका स्तम्भों पर यक्ष–यक्षियों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण कराई गई। मथुरा की कुषाण कालीन कला में भी यक्ष प्रतिमाओं का अस्तित्व दिखाई पड़ता है। किन्तु यहाँ वे अपने स्वतन्त्र, विशाल स्वरूप में नहीं है अपितु परिवार–देवता, सहायक आकृति अथवा भारवाही स्वरूप में विद्यमान हैं। मथुरा तथा कौशाम्बी से ऐसी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। इस समय कुबेर और उनकी पत्नी हारीती की अनेक मूर्तियाँ निर्मित हुई। हारीती को बच्चों का कल्याण करने वाली देवी के रुप में पूजा गया। गुप्त कला और साहित्य में भी यक्ष पूजा के उदाहरण मिलते हैं। कालिदास ने यक्षराज कुबेर को अलकापुरी का अधिपति बताया है। अजन्ता की गुफाओं में यक्ष का चित्र प्राप्त हुआ है।[8] परवर्ती बोधिसत्व, तीर्थंकर और विष्णु मूर्तियों को इन यक्ष मूर्तियों ने ही प्रेरणा प्रदान की। शरीर, आकार, रुप तथा वेशभूषा के विषय में शिल्पियों ने यक्ष मूर्तियों को नमूना मानकर ही कार्य किया।

गणेश, लक्ष्मी के साथ कुबेर का अंकन कई प्रस्तर फलकों पर मिलता है जो चिर समृद्धि का सूचक है। आबानेरी तथा ओसियां से ऐसी प्रतिमायें प्राप्त हुई है। परखम की यक्ष प्रतिमा मणिभद्र की मानी जाती है। प्रतिमा भारी–भरकम है तथा पत्थर को चारों ओर गोलाई में तराशकर बनाई गई है। इसके भुजाओं से नीचे के हाथ टूट कर लुप्त हो चुके हैं। नोह की यक्ष मूर्ति द्वितीय शती ई. पू. की प्रतीत होती है। घटोदर यक्ष प्रतिमा के पेट पर उदरबंध है। सिर पर पगडी, कंठाहार व बाजूबंद धारण किये हैं। पटना से प्राप्त यक्ष मूर्तियाँ लेखयुक्त है। दीदारगंज से यक्षिणी की अदभुत प्रतिमा प्राप्त हुई हैं। चारों ओर से गढ़ कर बनाई गई, चौकी पर स्थावर प्रतिमा हाथ में चामर पकड़े हुए है। सुघड़ आनुपातिक अंग, कलात्मक शिरोभूषा, आभूषण एवं अधोवस्त्र के रुप में साड़ी प्रतिमा को विषिष्ट स्वरुप प्रदान करते हैं।

प्राचीन भारत के अनेक स्थलों से प्राप्त ये प्रतिमाएँ तात्कालीन लोक जीवन एवं धर्म की जीवन्त अभिव्यक्तियाँ है। यक्ष पूजा की परम्परा भारत की प्राचीनतम धार्मिक परम्पराओं में से एक थी। यह बडी अद्भुत बात है कि बिना किसी राजकीय प्रश्रय के यह परम्परा केवल लोक आस्था, विश्वास और श्रद्धा के साथ फलती–फूलती रही। आष्चर्य का विषय है कि इस समय जन शैली का अपना निजी अस्तित्व था और इसने शुंग, कुषाण और गुप्त राजकीय कला पर गहरा प्रभाव डाला।

मंदिरो के बाहर कुबेर या यक्ष की प्रतिमा धन रक्षक के रुप में स्थापित की जाती थी। राजस्थान के प्राचीन मंदिरो के गर्भगृह के जंघा भाग पर दिक्पाल के रुप में कुबेर की मूर्तियाँ रूथापित की गई थी। मान्यता है कि यक्ष धन के रक्षक होते हैं भोक्ता नहीं। अतः लोग धन व समृद्धि के लिए तथा अच्छे स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन की आकांक्षा के लिए यक्ष की प्रसन्नता की कामना करते थे।

यही कारण है कि हर गाँव में यक्ष का चौरा निर्माण कराया जाता था।

निष्कर्ष

यक्ष पूजा की परम्परा अपने विविध स्वरूप में आज तक अक्षुण्ण है। जन साधरण जाक्ख के रुप में आज भी उनकी पूजा करता है। नोह (भरतपुर) में बाइस सौ वर्षों के उपरान्त भी ग्रामवासी विशालकाय घटोदर प्रतिमा की जाक्ख बाबा (संस्कृत यक्ष) के नाम से पूजा करते हैं। जन साधारण का विश्वास है कि वह समूचे ग्राम का शुभेच्छु, पालक एवं रक्षक है। आज भी अनेक गाँवों में बीर के नाम से यक्ष का चौरा मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ऋग्वेद, 7/61/5*
2. *वही, 4/3/13*
3. *अथर्ववेद, 10/2/29–33*
4. *रामायण, किष्किन्धाकाण्ड़, 11/94*
5. *महाभारत, शान्तिपर्व, 71/15*
6. *वही, वनपर्व, 152/18*
7. *गुप्त, शिवकुमार (संपा), भारतीय संस्कृति के मूल आधार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 298*
8. *अग्रवाल पी.के., गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, बुक्स एशिया, वाराणसी,पृ. 46*